Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.shisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2025 SHISRRJ | Volume 8 | Issue 2
ISSN : 2581-6306
doi : https://doi.org/10.32628/SHISRRJ

भारतीय ज्ञान परंपरा के परिप्रेक्ष्य में वेदों में राष्ट्रीय भावना

डॉ. वन्दना द्विवेदी
सह–आचार्य, संस्कृत विभाग, नवयुग कन्या महाविद्यालय राजेन्द्र नगर लखनऊ, सदस्य –उत्तर प्रदेश संस्कृत माध्यमिक शिक्षा परिषद्

Article Info
Accepted : 01 April 2025
Published : 12 April 2025

Publication Issue :
March-April-2025
Volume 8, Issue 2

Page Number : 134-138

शोध सारांश– ऋग्वेद की संस्कृति हमें जीने का सहीढंग कितनी स्पष्टता से बताती है वेद के ऋषि कहते हैं हम अपने कानों से अच्छी बातें सुन अपनी आंखों से शुभ एवं कल्याणकारी चीजों का दर्शन करें अपने शुद्ध अंगों से लोक कल्याण में ही अपना जीवन यापन करें हमारे कानों में अच्छे बुरे सभी प्रकार के शब्द आते हैं किंतु यह हम पर निर्भर करता है कि हम किस बात पर ध्यान देते हैं इसी प्रकार हमारी आंखों के आगे अच्छे बुरे सभी प्रकार के दृश्य आते रहते हैं किंतु हम अपने रुचि के अनुसार उसे पर ध्यान देते हैं हमारी इच्छा शक्ति यानी विल पावर हमें इस चैनल में सहायता देती है सेवा भाव कल्याणकारी प्रवृत्ति है किंतु इसके लिए प्राथमिक आवश्यकता एक स्वस्थ और सबल शरीर की होती है इस वैदिक श्रुति में यही प्रार्थना की गई है।

मुख्य शब्द– वेद, राष्ट्रीय, भावना, भारतीय, ज्ञान–परंपरा, संस्कृति।

वेद हमारे ज्ञान विज्ञान के अपरिमित स्रोत हैं। हमारे अति प्राचीन चिंतन धारा के कोष वेद ही हैं हमारे ऋषियों ने वेदों में मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं की पर्याप्त मीमांसा प्रस्तुत की है। हमारे ऋषियों की दृष्टि केवल सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्षों तक ही सीमित नहीं थी अपितु स्वदेश भक्ति स्वदेश प्रेम अथवा राष्ट्र प्रेम के भाव को भी उजागर करती है क्योंकि हमारे त्रिकालदर्शी तत्ववेत्ता ऋषियों को भली–भांति ज्ञात था कि अपनी सामूहिक सम्मान पूर्णसत्ता बनायें रखने के लिए परम आवश्यक है, अपने देश अपनी धरती और अपने देश का तन मन धन से सुरक्षा की जाए और यह तभी संभव है जबकि हम अपनी जन्मभूमि अपनी धरती अपने देश और अपने राष्ट्र भूमि के प्रति उन्नति के लिए तन–मन धन से क्रियावान बने,और सदैव निष्ठावान रहें। अपने देश को अपने धरती को अर्थात अपने जन्मभूमि को माता माने इस की भावना हमेशा सर्व प्रथम वेदों में ही उपलब्ध होती है। इसी प्रकार अपने जन्मभूमि को अपने मातृभूमि को माता शब्द से संबोधित करने की शिक्षा भी हमें वेदों से ही मिलती है– **तन्नोवातो मयोभु वायु भेषजं तन्माता पृथ्वी तत्व पिता द्यौः।**[1]

इस प्रकार अपने जन्मभूमि को मातृभूमि कहकर संबोधित करने की शिक्षा हमेशा प्रथमदृष्टया वेदों से ही मिलती है–**इन्द्रो यां चक्रःआत्मनेऽनमित्रां शचीपति।**

सा नो भूमिविसृजतां मातापुत्राय मे पयः।[2] वैदिक ऋषि मातृभूमि के प्रति सदैव निष्ठावान रहें हैं उनकी दृष्टि में उनके लिए उनकी मातृभूमि ही सर्वस्व है, वह इसे ही स्वर्ग और अंतरिक्ष मानते हैं माता और पिता मानते हैं, देवता समझते हैं समाज के

Copyright © 2025 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

सभी पांचो वर्णों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद की कुशल कामना हेतु वेदों में यथास्थान प्रार्थनाएं की गई है। वेदों में यह वर्णन देखने को मिलता है, कि समाज का कोई भी वर्ण हो या कोई भी वर्ग हो सब मेंओज –तेज के लिए समान रूप से प्रार्थनाएं की गई है। कहीं किसी भेदभाव या पक्षपात का लेशमात्र भी वर्णन नहीं प्राप्त होता है––

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु, रुचं राजसु नस्कृधि। रुचं वैश्येषु,शुद्रेषु,मति धेहि रुचा रुचा रुचम्।।[3] अर्थात् है अपने देव हमारे ब्राह्मण को तेजस्वी करो हमारे छात्रों को तेजस्वी बना हमारे वैश्यों को तेजस्वी करो हमारे सूत्रों को तेजस्वी करो मुझ में बढ़कर तेज की स्थापना करो प्रार्थना करने वाला स्वयं अपना हित तो चाहता है किंतु सभी के हित के बाद। सभी का कल्याण हो उसके पीछे मेरा भी कल्याण हो इस प्रकार के उदारता भावना केवल वेदों में ही दिखाई देती हैं। ऋग्वेद के दशम मंडल में कहा गया है कि– **सं गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।**

देवा भागं यथा पूर्वेसंजानाना उपासते।।[4] ऋग्वेद में सामाजिक सद्भावना एवं दृढ़ता के लिए दशम मंडल में उल्लेख मिलता है कि भेदभाव या वे मनुष्य बना रहे सब के विचार मानचित्र बुद्ध की एकता हो और सब में शाम मनुष्य स्थापित हो ऐसी ऋषि की कामना है –"समानो मंत्र: समिति: समानी, समानं मन: सह चित्तमेषाम्।[5] इसके आगे के मंत्र में मनुष्यों को संगठित होने की कामना की गई है ऋषि कहता है कि स्तोताओं(मनुष्यो)तुम्हारा हृदय (भावना) एक समान हो तुम्हारे मन(विचार) एक जैसे हो ,संकल्प एक जैसे हो, ताकि तुम संगठित होकर अपने सभी कार्य कर सको।

समानी व आकूति:समाना हृदयानि व:।

समानमस्तुवो मनो यथा व:सुसहासति।[6] अथर्ववेद के सर्वप्रिय सूक्त में सामाजिक सौहार्द के लिए उल्लेखनीय है कि **प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शुद्र उतार्ये।** ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में चतुर वर्ण की उत्पत्ति को विराट पुरुष के शरीर के अंग बढ़कर दूसरे रूप में उन्हें सामाजिक शरीर का अंग ही अभी किया गया है जो सामाजिक एकता को स्थापित करने की पुष्टि करता है एक भारतीय ध्यान देने योग्य है कि वेदों में शूद्रों के प्रति कहीं घृणा या तिरस्कार की भावना नहीं दिखाई देती है यथा स्थान उनमें तेज तथा बुद्धि के विकास और योग क्षेम हेतु प्रार्थना की गई है शूद्र शब्द 'शुच्' धातु से निष्पन्न हुआ है इसका अर्थ पवित्रता से संबंधित है, शुद्र को विराट पुरुष का चरण बताया गया है और अर्चन पूजन चरण का ही किया गया है वर्णाश्रम व्यवस्था को अनभिज्ञ लोग दोषपूर्ण मानते हैं जबकि वर्णाश्रम वैदिक स्थापना है इसमें भले ही समय रके साथ सुधार अपेक्षित है बहिष्कार नहीं।

वेदों में राष्ट्रीयता के ही अपना अतीत और भविष्य मानते हैं इसके प्रति कृतज्ञ होकर इसका गुणगान करते हैं। अथर्ववेद में राष्टसूक्त और 'मातृभूमि सूक्त' राष्ट्रीय चेतना जागरण के मूलमंत्र के रूप में द्रष्टव्य है क्योंकि यह मातृभूमि उनकी कल्याणकारी माता है विपुल शक्तिदायिनी है, नित्य नूतन है, विशाल है, सुखद है, योगक्षेम कारिणी है और भोजन दायिनी है।

अदितिद्योर्र्न्तरिक्षमदितिर् स पिता स पुत्र:।

विश्वे देवा अदिति: पंच जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्-(अथर्ववेद 7/6/1-4)

वेदों में राष्ट्र प्रेम के बड़े ही महत्वपूर्ण सुख दिए गए हैं अथर्ववेद में राष्ट्र सूक्त और मातृभूमि सूक्त राष्ट्रीय चेतना जागरण के मूल मंत्र के रूप में दृश्य इन सूक्त में बताया गया कि राष्ट्रपति हेतु आवश्यक है कि राष्ट्रवासियों के हृदय में राष्ट्र की भूमि और उसके ऊपर छाये आकाश से निकट के भावात्मक संबंध जोड़े जाय धरती से यहां पर माता और आकाश से सुंदर पिता का संबंध जोड़ने से नैसर्गिक प्रेम भाव स्वत: उत्पन्नहो जायेगा अथर्ववेद में ऐसा ही प्रेम देश की धरती और आकाश से जोड़ा गया है – **माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:। पर्जन्य: पिता स उ न:पिपर्तु।**[7] वेदों में राष्ट्रीयता के उत्कृष्ट गुणों के विकास

के सूत्रों प्रवृत्तियों एवं मर्यादाओं का उल्लेख है उस क्रम में अनुभव होने वाले कठिनाइयों तथा उनके निवारण सूत्रों का भी उल्लेख है धरती का सर्वश्रेष्ठ ईश्वर को समझना, स्वयं को स्वामी ना मानकर ट्रस्टी के रूप में देखना त्यागपूर्वक उपभोग दूसरों के अधिकार की वस्तु को हड़पने की चेष्टा ना करना उसकी लालच ना करना ही व्यक्ति समाज राष्ट्र और आगे बढ़कर विश्व शांति और विश्व कल्याण का विधायक है–सर्वे भवंतु सुखिन: सर्वे संतु निरामया: की उदात्त कामना वैदिक दृष्टिकोण की ही देन है।इस प्रकार वैदिक चिंतन मनुष्य के लिए ही नहीं पशु पक्षियों के प्रति भी उदार है। भारतीय ज्ञान परंपरा के परिप्रेक्ष्य में वेदों में राष्ट्रीय भावना वेद हमारे ज्ञान विज्ञान के अपरिमित स्रोत हैं। हमारे अति प्राचीन चिंतन धारा के कोष वेद ही हैं हमारे ऋषियों ने वेदों में मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं की पर्याप्त मीमांसा प्रस्तुत की है।

हमारे ऋषियों की दृष्टि केवल सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्षों तक ही सीमित नहीं थी अपितु स्वदेश भक्ति स्वदेश प्रेम अथवा राष्ट्र प्रेम के भाव को भी उजागर करती है क्योंकि हमारे त्रिकालदर्शी तत्ववेत्ता ऋषियों को भली–भांति ज्ञात था कि अपनी सामूहिक सम्मान पूर्णसत्ता बनायें रखने के लिए परम आवश्यक है अपने देश अपनी धरती और अपने देश का तन मन धन से सुरक्षा की जाए और यह तभी संभव है जबकि हम अपनी जन्मभूमि अपनी धरती अपने देश और अपने राष्ट्र भूमि के प्रति उन्नति के लिए तन–मन धन से क्रियावान बने,और सदैव निष्ठावान रहें। अपने देश को अपने धरती को अर्थात अपने जन्मभूमि को माता माने इस की भावना हमेशा सर्व प्रथम वेदों में ही उपलब्ध होती है। इसी प्रकार अपने जन्मभूमि को अपने मातृभूमि को माता शब्द से संबोधित करने की शिक्षा भी हमें वेदों से ही मिलती है–**तन्नोवातो मयोभु वायु भेषजं तन्माता पृथ्वी तत्व पिता द्यौ:।**[8]

इस प्रकार अपने जन्मभूमि को मातृभूमि कहकर संबोधित करने की शिक्षा हमेशा प्रथमदृष्टया वेदों से ही मिलती है–**इन्द्रो यां चक्र:आत्मनेऽनमित्रां शचीपति।**

सा नो भूमिविसृजतां मातापुत्राय मे पय:।।[9]

वैदिक ऋषि मातृभूमि के प्रति सदैव निष्ठावान रहें हैं उनकी दृष्टि में उनके लिए उनकी मातृभूमि ही सर्वस्व है, वह इसे ही स्वर्ग और अंतरिक्ष मानते हैं माता और पिता मानते हैं ,देवता समझते हैं समाज के सभी पांचो वर्णों में ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य, शूद्र, निषाद की कुशल कामना हेतु वेदों में यथास्थान प्रार्थनाएं की गई है। वेदों में यह वर्णन देखने को मिलता है कि समाज का कोई भी वर्ण हो या कोई भी वर्ग हो सब मेंओज – तेज के लिए समान रूप से प्रार्थनाएं की गई है ।कहीं किसी भेदभाव या पक्षपात का लेशमात्र भी वर्णन नहीं प्राप्त होता है–

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु, रुचं राजसु नस्कृधि । रुचं वैश्येषु,शुद्रेषु,मति धेहि रुचा रुचा रुचम्।।[10]

अर्थात् है अपने देव हमारे ब्राह्मण को तेजस्वी करो हमारे छात्रों को तेजस्वी बना हमारे वैश्यों को तेजस्वी करो हमारे सूत्रों को तेजस्वी करो मुझ में बढ़कर तेज की स्थापना करो प्रार्थना करने वाला स्वयं अपना हित तो चाहता है किंतु सभी के हित के बाद। सभी का कल्याण हो उसके पीछे मेरा भी कल्याण हो इस प्रकार के उदारता भावना केवल वेदों में ही दिखाई देती हैं। ऋग्वेद के दशम मंडल में कहा गया है कि–– सं गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागं यथा पूर्वेसंजानाना उपासते।।[11] ऋग्वेद में सामाजिक सद्भावना एवं दृढ़ता के लिए दशम मंडल में उल्लेख मिलता है कि भेदभाव या वे मनुष्य बना रहे सब के विचार मानचित्र बुद्ध की एकता हो और सब में शाम मनुष्य स्थापित हो ऐसी ऋषि की कामना है – **"समानो मंत्र: समिति: समानी, समानं मन: सह चित्तमेषाम्।**[12] इसके आगे के मंत्र में मनुष्यों को संगठित होने की कामना की गई है ऋषि कहता है कि स्तोताओं(मनुष्यो)तुम्हारा हृदय (भावना) एक समान हो तुम्हारे मन(विचार) एक जैसे हो ,संकल्प एक जैसे हो, ताकि तुम संगठित होकर अपने सभी कार्य कर सको।

समानी व आकूति:समाना हृदयानि व:।

समानमस्तुवो मनो यथा व:सुसहासति।[13] ।

अथर्ववेद के सर्वप्रिय सूक्त में सामाजिक सौहार्द के लिए उल्लेखनीय है कि-प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शुद्र उतार्ये। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में चतुर वर्ण की उत्पत्ति को विराट पुरुष के शरीर के अंग बढ़कर दूसरे रूप में उन्हें सामाजिक शरीर का अंग ही अभी किया गया है जो सामाजिक एकता को स्थापित करने की पुष्टि करता है एक भारतीय ध्यान देने योग्य है कि वेदों में शूद्रों के प्रति कहीं घृणा या तिरस्कार की भावना नहीं दिखाई देती है यथा स्थान उनमें तेज तथा बुद्धि के विकास और योग क्षेम हेतु प्रार्थना की गई है शूद्र शब्द 'शुच्' धातु से निष्पन्न हुआ है इसका अर्थ पवित्रता से संबंधित है शुद्र को विराट पुरुष का चरण बताया गया है और अर्चन पूजन चरण का ही किया गया है वर्णाश्रम व्यवस्था को अनभिज्ञ लोग दोषपूर्ण मानते हैं जबकि वर्णाश्रम वैदिक स्थापना है इसमें भले ही समय रके साथ सुधार अपेक्षित है बहिष्कार नहीं।

वेदों में राष्ट्रीयता के ही अपना अतीत और भविष्य मानते हैं इसके प्रति कृतज्ञ होकर इसका गुणगान करते हैं। अथर्ववेद में राष्टसूक्त और 'मातृभूमि सूक्त' राष्ट्रीय चेतना जागरण के मूलमंत्र के रूप में द्रष्टव्य है क्योंकि यह मातृभूमि उनकी कल्याणकारी माता है विपुल शक्तिदायिनी है, नित्य नूतन है, विशाल है, सुखद है, योगक्षेम कारिणी है और भोजन दायिनी है।

अदितिद्योर्र्न्तरिक्षमदितिर् स पिता स पुत्र:।

विश्वे देवा अदिति:पंच जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्-(अथर्ववेद 7/6/1-4) वेदों में राष्ट्र प्रेम के बड़े ही महत्वपूर्ण सुख दिए गए हैं अथर्ववेद में राष्ट्र सूक्त और मातृभूमि सूक्त राष्ट्रीय चेतना जागरण के मूल मंत्र के रूप में दृश्य इन सूक्त में बताया गया कि राष्ट्रपति हेतु आवश्यक है कि राष्ट्रवासियों के हृदय में राष्ट्र की भूमि और उसके ऊपर छाये आकाश से निकट के भावात्मक संबंध जोड़े जाय धरती से यहां पर माता और आकाश से सुंदर पिता का संबंध जोड़ने से नैसर्गिक प्रेम भाव स्वत: उत्पन्नहो जायेगा अथर्ववेद में ऐसा ही प्रेम देश की धरती और आकाश से जोड़ा गया है - **माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:। पर्जन्य: पिता स उ न:पिपर्तु**[14] वेदों में राष्ट्रीयता के उत्कृष्ट गुणों के विकास के सूत्रों प्रवृत्तियों एवं मर्यादाओं का उल्लेख है उस क्रम में अनुभव होने वाले कठिनाइयों तथा उनके निवारण सूत्रों का भी उल्लेख है धरती का सर्वश्रेष्ठ ईश्वर को समझना, स्वयं को स्वामी ना मानकर ट्रस्टी के रूप में देखना त्यागपूर्वक उपभोग दूसरों के अधिकार की वस्तु को हड़पने की चेष्टा ना करना उसकी लालच ना करना ही व्यक्ति समाज राष्ट्र और आगे बढ़कर विश्व शांति और विश्व कल्याण का विधायक है -सर्वे भवंतु सुखिन: सर्वे संतु निरामया: की उदात्त कामना वैदिक दृष्टिकोण की ही देन है। इस प्रकार वैदिक चिंतन मनुष्य के लिए ही नहीं पशु पक्षियों के प्रति भी उदार है।

भद्रं कर्णेभि: श्रुणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा:-ऋग्वेद की संस्कृति हमें जीने का सहीढंग कितनी स्पष्टता से बताती है वेद के ऋषि कहते हैं हम अपने कानों से अच्छी बातें सुन अपनी आंखों से शुभ एवं कल्याणकारी चीजों का दर्शन करें अपने शुद्ध अंगों से लोक कल्याण में ही अपना जीवन यापन करें हमारे कानों में अच्छे बुरे सभी प्रकार के शब्द आते हैं किंतु यह हम पर निर्भर करता है कि हम किस बात पर ध्यान देते हैं इसी प्रकार हमारी आंखों के आगे अच्छे बुरे सभी प्रकार के दृश्य आते रहते हैं किंतु हम अपने रुचि के अनुसार उसे पर ध्यान देते हैं हमारी इच्छा शक्ति यानी विल पावर हमें इस चैनल में सहायता देती है सेवा भाव कल्याणकारी प्रवृत्ति है किंतु इसके लिए प्राथमिक आवश्यकता एक स्वस्थ और सबल शरीर की होती है इस वैदिक श्रुति में यही प्रार्थना की गई है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. ऋग्वेद 1/89/4
2. अथर्ववेद 12/1/90
3. यजुर्वेद 18/48
4. ऋग्वेद 10/191/2
5. 10/191/3
6. 10/191/4
7. अथर्ववेद12/1/12
8. ऋग्वेद 1/89/4
9. अथर्ववेद 12/1/90
10. यजुर्वेद 18/48
11. ऋग्वेद 10/191/2
12. 10/191/3
13. 10/191/4
14. अथर्ववेद12/1/12